E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

व्यञ्जनावृत्ति

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

व्यञ्जना को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।

फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया।

अर्थात् जिस (प्रयोजन विशेष) की प्रतीति कराने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से गम्य उस प्रयोजन के विषय में व्यंजना के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं है।

इसी को आगे स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट पुनः कहते हैं-

"प्रयोजनप्रतिपादियिषया यत्न लक्षणया शब्दप्रयोगस्तत्र नान्यतस्तत्प्रतीतिरपि तु तस्मादेव शब्दात्। न चात्र व्यञ्जनादृतेऽन्यो व्यापारः"।

अर्थात् प्रयोजन विशेष के प्रतिपादन करने की इच्छा से जहाँ लक्षणा द्वारा शब्द प्रयोग किया जाता है, वहाँ (अनुमानादि) अन्य के द्वारा उसकी प्रतीति नहीं होती; बल्कि उसी शब्द के द्वारा होती है। यहाँ व्यंजना के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं हो सकता।

आचार्य मम्मट का कहना है कि जिस शैल्यपावनत्व रूप प्रयोजन की प्रतीति कराने के लिए लक्षणा अर्थात् लाक्षणिक शब्द का सहारा लिया जाता है, केवल लाक्षणिक शब्द से गम्य उस शैत्य-पावनत्व रूप प्रयोजन के विषय में व्यंजना के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं हो सकता। अपितु व्यंजना व्यापार ही वह शक्ति है जिसके द्वारा शैत्य-पावनत्वरूप प्रयोजन की प्रतीति होती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि शैल्य-पावनत्व रूप अर्थ की प्रतीति तो अभिधा के द्वारा भी हो सकती है, अतः उसके लिए व्यंजना वृत्ति मानने की क्या आवश्यकता है? इस शंका का निराकरण करने के लिए मम्मट कहते हैं-

"नाभिधा समयाभावात्"।

अर्थात् समय अर्थात् संकेतग्रह न होने से अभिधा नहीं है।

इसको स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ ये पावनत्वादयो धर्मास्तटादौ प्रतीयन्ते न तत्र गङ्गादिशब्दाः संकेतिताः। अर्थात् 'गंगायां घोषः' इस उदाहरण में जो पावनत्व आदि धर्म तट आदि में प्रतीत होते हैं उनमें गंगा आदि शब्दों का संकेत नहीं किया गया है।

आचार्य मम्मट का कहना है कि शैत्यपावनत्व आदि प्रयोजन की प्रतीति अभिधाशक्ति समर्थ नहीं है। भाव यह कि 'गंगायां घोषः' शैत्यपावनत्वरूप अर्थ की प्रतीति अभिधा के द्वारा नहीं हो सकती; क्योंकि अभिधा शक्ति में संकेतग्रह का होना आवश्यक है। 'गंगायां घोषः' इस उदाहरण में शैत्यपावनत्वरूप अर्थ में गंगा शब्द का संकेतग्रह नहीं है और अभिधाशक्ति का व्यापार वहीं होता है जहाँ शब्द का संकेत होता है। 'गंगायां घोषः' में गंगा शब्द लक्षणा के द्वारा तट रूप का बोध कराता है और तट में शैत्यपावनत्व आदि की प्रतीति कराना लक्षणा का प्रयोजन है, अतः शैत्यपावनत्व आदि की प्रतीति अभिधा के द्वारा नहीं हो सकती; क्योंकि शैत्य-पावनत्व रूप अर्थ में गंगा शब्द का संकेत ग्रह न होने से अभिधा वृत्ति का विषय ही नहीं बनता। अब प्रश्न यह है कि यदि कहा जाय कि गंगा शब्द का तट में लक्षणा होने पर भी पुनः गंगा पद यह शैत्यपावनत्वरूप अर्थ लक्षणा के द्वारा ज्ञात हो जायगा तो उसके लिए व्यंजना वृत्ति मानने की क्या आवश्यकता है। इस शंका का निराकरण करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

"हेत्वभावान्न लक्षणा।मुख्यार्थबाधादित्रयं हेतुः"।

अर्थात् हेतुओं के न होने से लक्षण भी नहीं है। मुख्यार्थ का बाध आदि तीन हेतु हैं ।

इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट पुनः कहते हैं-

लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधो योगः फलेन नो।
न प्रयोजनमेतस्मिन् न च शब्दः स्खलद्गतिः।।

यथा गंगाशब्दः स्त्रोतसि सबाध इति तटं लक्षयति, तद्वत् यदि तटेऽपि सबाधः स्यात्तत्प्रयोजनं लक्षयेत्। न च तटं मुख्योऽर्थः, नाप्यत्र बाधः न च गंगाशब्दार्थस्य तटस्य पावनत्वाद्यैर्लक्षणीयैः सम्बन्धः। नापि प्रयोजने लक्ष्ये किञ्चित्प्रयोजनम्। नापि गंगाशब्दस्तटमिव प्रयोजनं प्रतिपादयितुमसमर्थः।

अर्थात् यहाँ पर लक्ष्यार्थ मुख्य अर्थ नहीं है, उसका यहाँ बाध भी नहीं हैं, और न (पावनत्वादि), फल के साथ सम्बन्ध ही है और न इसमें कोई प्रयोजन है तथा न शब्द स्खलद्गति ही है। जैसे गंगा शब्द प्रवाहरूप अर्थ में बाधित होकर लक्षणा से तटरूप अर्थ का बोध कराता है, उसी प्रकार यदि तट में भी बाधित होता तो प्रयोजन को लक्षणा से बोध करा सकता था, किन्तु न तो तट मुख्य् अर्थ है, न उसका बाध ही है और न गंगा शब्द के अर्थ तट का पावनत्व आदि लक्षणीय के साथ सम्बन्ध है और न प्रयोजन के लक्ष्यार्थ मानने में कोई अन्य प्रयोजन ही है और न गंगा शब्द तट के समान प्रयोजन का प्रतिपादन करने में असमर्थ है।

प्रश्न यह है कि यदि अभिधा के द्वारा शैत्यपावनत्व रूप प्रयोजन की प्रतीति सम्भव नहीं है तो लक्षणा के द्वारा उसकी प्रतीति मान ली जाय। 'गंगायां घोषः' यहाँ पर पहले गंगा शब्द लक्षणा के द्वारा तटरूप अर्थ को उपस्थित करेगा, फिर गंगा शब्द शैत्यपावनत्व रूप अर्थ को लक्षित करेगा, इस प्रकार लक्ष्य की सिद्धि हो जायगी तो व्यंजना मानने की क्या आवश्यकता है? इस पर आचार्य मम्मट कहते हैं कि मुख्यार्थबाध आदि हेतुत्रय के न होने से यहाँ लक्षणा नहीं होगी। मम्मट ने लक्षणा के तीन हेतु बताये हैं- मुख्यार्थबाध, मुख्यार्थ से सम्बन्ध, और रूढ़ि या प्रयोजन। लक्षणा में इन तीन हेतुओं का होना आवश्यक है। यहां उक्त मुख्यार्थ बाधादि तीनों हेतुओं के न होने से शैत्यपावनत्वादिरूप अर्थ की प्रतीति लक्षणा के द्वारा नहीं हो सकती।

लक्षणा का प्रथम हेतु मुख्यार्थ बाध है। यहाँ पर मुख्यार्थ बाध नहीं है, क्योंकि यदि शैत्यपावनत्वरूप अर्थ को यदि लक्ष्यार्थ मानते हैं तो तटरूप अर्थ को मुख्यार्थ मानना पड़ेगा; किन्तु तटरूप अर्थ तो लक्ष्यार्थ है, मुख्यार्थ नहीं, यदि उसे किसी प्रकार मुख्यार्थ मान भी लिया जाय तो लक्षणा के पूर्व मुख्यार्थ का बाध होना चाहिए, किन्तु यहाँ पर मुख्यार्थबाध भी नहीं है; क्योंकि तट पर तो घोष रहता ही है-**"तटे घोषाधिकरणत्वादसम्भवरूपो बाधोऽपि नः"।** अतः यहां लक्षणा नहीं हो सकती।

लक्षणा का द्वितीय हेतु मुख्यार्थयोग अर्थात् मुख्यार्थ से सम्बन्ध है। यहाँ पर मुख्यार्थ योग भी नहीं है। क्योंकि यदि शैत्यपावनत्व आदि को लक्ष्यार्थ मान भी लिया जाय तो तट रूप अर्थ को मुख्यार्थ मानना पड़ेगा और उसके साथ शैल्य-पावनत्व रूप लक्ष्यार्थ का साक्षात् सम्बन्ध भी होना चाहिए, किन्तु

यहाँ शैत्य-पावनत्व आदि का तटरूप अर्थ के साथ साक्षात् सम्बन्ध भी नहीं है, उसका साक्षात् सम्बन्ध तो गंगाप्रवाह के साथ है। अतः यहाँ पर द्वितीय हेतु भी न होने से लक्षणा नहीं हो सकती ।

लक्षणा का तृतीय हेतु 'रूढ़ि' या 'प्रयोजन' है । यहाँ पर तुतीय हेतु भी नहीं है; क्योंकि शैत्यपावनत्व आदि प्रयोजन को यदि लक्ष्यार्थ माना जायगा तो उसका कोई अन्य प्रयोजन मानना पड़ेगा। इस प्रकार यदि प्रयोजन का भी प्रयोजन मानेंगे तो उसका भी कोई प्रयोजन मानना पड़ेगा और उसका भी अन्य प्रयोजन मानना पड़ेगा। इस प्रकार अनवस्था दोष आ जायगा, अतः यहाँ पर रूढ़ि या प्रयोजन हेतु न होने से लक्षणा नहीं हो सकती।

इस प्रकार हेतुत्रय के अभाव में यहाँ लक्षणा नहीं होगी-'हेत्वभावान्न लक्षणा'। अब प्रश्न यह उठता है कि मुख्यार्थबाधादि हेतुप्रय के अभाव में भी यहाँ लक्षणा क्यों न मान लिया जाय ? क्योंकि जिस प्रकार गंगा शब्द प्रवाह रूप मुख्यार्थबाधादि के साथ लक्षणा के द्वारा तट रूप अर्थ को बोध कराता है, उसी प्रकार गंगा शब्द तटरूप अर्थ का लक्षणा के द्वारा बोध कराकर उसे लक्षणा सामग्री से शैत्यपावनत्व रूप अर्थ का बोध करा दे तो इसमें क्या आपत्ति है? इस पर कहते हैं कि यदि शैत्यपावनत्वरूप प्रयोजन को लक्ष्यार्थ मान भी लिया जाय तो भी 'शब्द का स्खलद्गति' होना आवश्यक है। जैसे 'गंगायां घोषः' में गंगा शब्द का लक्ष्यार्थ तट है किन्तु मुख्यार्थबाधादि के बिना गंगा शब्द तट का बोध कराने में असमर्थ है, अतः तट रूप अर्थ के बोध कराने में गंगा शब्द 'स्खलद्गति' है। अतः वह लक्षणा के द्वारा तट रूप अर्थ का बोध कराता है। किन्तु शैत्य-पावनत्व आदि धर्म बिना मुख्यार्थ बाध के भी गंगा शब्द के अर्थ के साथ स्वयं प्रकट हो जाते हैं, अतः शैत्य-पावनत्व रूप अर्थ की प्रतीति लक्षणा से नहीं हो सकती।

आचार्य मम्मट ने 'स्खलद्गति' शब्द की व्याख्या करते हुए वृत्ति में लिखा है कि 'नापि गंगाशब्दः तटमिव प्रयोजनं प्रतिपादयितुमसमर्थः'। अर्थात् गंगा शब्द तट के समान प्रयोजन के प्रतिपादन में असमर्थ (स्खलद्गति) भी नहीं है । इस कथन का तात्पर्य यह कि जिस प्रकार गंगा शब्द मुख्यार्थवाधादि के बिना तट रूप अर्थ का प्रतिपादन करने में असमर्थ (स्खलद्गति) नहीं है, इस प्रकार शैत्यपावनत्वादि रूप प्रयोजन के प्रतिपादन में असमर्थ नहीं है, बल्कि समर्थ है। इसलिए प्रयोजन में 'स्खलद्गति' न होने से 'लक्षणा' नहीं हो सकती ।

दूसरे यह भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार प्रवाहरूप मुख्यार्थ का बाध होने से तटरूप अर्थ का लक्षणा के द्वारा बोध होता है उसी प्रकार प्रवाह रूप मुख्यार्थ का बाध होने से शैत्यपावनत्व रूप अर्थ (प्रयोजन) का भी लक्षणा के द्वारा बोध हो जायगा, क्योंकि यहाँ पर भी तो निष्ठा शैत्यपावनत्व रूप लक्ष्यार्थ में घोषनिष्ठ पावनत्व आदि प्रयोजन व्यंग्य है किन्तु इस प्रकार प्रयोजन का प्रयोजन मानने पर अनवस्था दोष होगा। इसी बात को स्पष्ट करते हुए मम्मट कहते हैं-

"एवमप्यनवस्था स्याद् या मूलक्षयकारिणी। एवमपि प्रयोजनं चेल्लक्ष्यते तत् प्रयोजनान्तरेण तदपि प्रयोजनान्तरेणति प्रकृताप्रतीतिकृत् अनवस्था भवेत्"।

अर्थात् इस प्रकार अनवस्था दोष आ जायगा जो मूल का भी विनाश करने वाला है। इस प्रकार यदि प्रयोजन को भी लक्ष्यार्थ मानेंगे तो वह भी अन्य प्रयोजन से और भी वह अन्य प्रयोजन से (लक्ष्यार्थ होगा), इस प्रकार प्रस्तुत (तटादि अथवा शैत्यपावनत्वादि रूप) अर्थ की भी अप्रतीति कराने वाली अनवस्था होगी।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य है कि यदि प्रयोजन को लक्ष्यार्थ मानते हैं तो वह अन्य प्रयोजन (प्रयोजनान्तर) से लक्ष्यार्थ होगा और वह प्रयोजन भी अन्य प्रयोजन रूप हेतु से लक्ष्यार्थ होगा, इस प्रकार प्रयोजन का प्रयोजन और प्रयोजन का प्रयोजन मानने की अविश्रान्त प्रयोजन-परम्परा में लक्षणा मानने पर अनवस्था दोष ही आ जायगा जो प्रस्तुत तटादि रूप अर्थ की प्रतीति में बाधा डालने वाली अर्थात् मूल का विनाश कर देनी वाली अनवस्था होगी।

अब पुनः एक प्रश्न यह उठता है कि पावनत्व आदि धर्म से युक्त ही तट लक्षित होता है और 'गंगा के तट पर घोष है' इससे अधिक अर्थ की प्रतीति प्रयोजन है। इस प्रकार प्रयोजनविशिष्ट में लक्षणा हो सकती है तो व्यञ्जना मानने से क्या लाभ? अर्थात् व्यञ्जना मानना व्यर्थ है, इस पर आचार्य मम्मट कहते हैं-

प्रयोजनेन सहितं लक्षणीयं न युज्यते।
ज्ञानस्य विषयो ह्यन्यः फलमन्यदुदाहृतम्।

अर्थात् प्रयोजन के सहित (तट को) लक्ष्यार्थ मानना उचित नहीं है क्योंकि ज्ञान का विषय अन्य होता है और ज्ञान का फल (प्रयोजन) अन्य कहा गया है।

यहाँ पर लक्षणाजन्य ज्ञान का विषय तट है और उसका फल (प्रयोजन) है शैत्यपावनत्व। ये दोनों एक साथ मिल नहीं सकते; क्योंकि विषय और फल में कार्यकारणभाव सम्बन्ध होता है। अतः ज्ञान के विषय और फल में कार्यकारणभाव सम्बन्ध होने से दोनों की समकालीन उत्पत्ति नहीं हो सकती, इसलिए पावनत्वादिविशिष्ट तट में लक्षणा नहीं होगी।

इस प्रकार प्रयोजनविशिष्ट में लक्षणा नहीं होती-विशेष्टे लक्षणा नैवम्।

परन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विशेष (पावनत्वादि) लक्षित अर्थ हो सकते हैं। तट आदि (लक्ष्यार्थ) में जो पावनत्व आदि विशेष (धर्म) हैं, वे अभिधा, तात्पर्य और लक्षणा से भिन्न व्यापार से गम्य हैं और व्यञ्जन, ध्वनन, द्योतन आदि शब्दों से वाच्य व्यंजना-व्यापार अवश्य मानना चाहिए। आचार्य मम्मट कहते हैं-"विशेषाः स्युस्तु लक्षिते। तदादौ पावनत्वादयस्ते चाभिधा-तात्पर्य-लक्षणाभ्यो व्यापारान्तरेण गम्यः। तच्च व्यञ्जन-ध्वनन-द्योतनादिशब्दवाच्यमवश्यमेषितव्यम्"।

इसी को आचार्य मम्मट लक्षणामूला व्यञ्जना भी कहते हैं-"एवं लक्षणामूलं व्यञ्जकत्वमुक्तम्"।

वस्तुतः व्यञ्जना दो प्रकार की होती है- शाब्दी व्यञ्जना और आर्थी व्यञ्जना। शाब्दी व्यञ्जना के के भी दो भेद होते हैं-लक्षणामूला और अभिधामूला। लक्षणामूला व्यञ्जना का निरूपण किया जा चुका है। अभिधामूला व्यञ्जना का निरूपण करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरञ्जनम्।।

अर्थात् संयोगादि के द्वारा अनेकार्थक शब्दों के वाचकत्व के नियन्त्रित हो जाने पर अवाच्य (वाच्यार्थ से भिन्न) अर्थ की प्रतीति (बोध, धी) कराने वाला व्यापार व्यंजना कहलाता है।

आचार्य मम्मट का कथन है कि जहां पर अनेकार्थक (अनेक अर्थ वाले) शब्द संयोग, वियोग आदि के द्वारा एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाने पर भी जो वाच्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ की प्रतीति कराते हैं, उस अन्य अर्थ की प्रतीति कराने वाला व्यापार व्यंजना व्यापार है, उसे ही अभिधामूला व्यंजना कहते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन संयोगादि के द्वारा अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाते हैं उन संयोगादि का अभिप्राय क्या है? इम प्रश्न के समाधान के लिए आचार्य मम्मट भर्तृहरिकृत वाक्पदीय से दो कारिकाएं उद्धृत करते हैं। भर्तृहरि ने उन कारिकाओं के आधार पर अनेकार्थक शब्दों का एकार्थ में नियन्त्रण करने के 14 कारण बताये हैं-

"संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः"।।

इस प्रकार 14 कारण हुए- (१) संयोग (२) विप्रयोग (३) साहचर्य (४) विरोधिता (५) अर्थ (६) प्रकरण (७) लिंग (८) अन्य शब्द की सन्निधि (६) सामर्थ्य (१०) औचित्य (११) देश (१२) काल (१३) व्यक्ति (लिंग) तथा (१४) स्वरादि।

ये संयोगादि अनेकार्थक शब्दों को एकार्थ में नियन्त्रित कर वाच्यार्थ अर्थात् विवक्षित अर्थ का ज्ञान कराते हैं। नागेशभट्ट संयोगादि का अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अनेकार्थक शब्दों के अर्थ निर्धारण में सदेह हो जाता है। तब संयोगादि के द्वारा अनेकार्थक शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ का निश्चय (निर्णय) किया जाता है, इसलिए संयोगादि को विशेष स्मृति हेतु अर्थात् अर्थनिर्णय का हेतु कहा जाता है-**"एते संयोगादयः शब्दार्थस्यानवच्छेदे सन्देहे तदपाकरणद्वारेण विशेषस्मृतिहेतव निर्णयहेतव इत्यर्थः"।**

आचार्य मम्मट ने इनका उदाहरण इस प्रकार दिया है- 'सशंखचक्रो हरिः', 'अशंखचक्रो हरि' इति अच्युते। रामलक्ष्मणाविति दाशरथी। 'रामार्जुनगतिस्तयोः' इति भार्गवकार्त्तवीर्ययोः। 'स्थाणु भज भवच्छिदे' इति हरे। 'सर्वं जानाति देव' इति युष्मदर्थे। 'कुपितो मकरध्वजः' इति कामे। 'देवस्य पुरारातेः' इति शम्भौ। 'मधुना मत्तः कोकिलः' इति वसन्ते। 'पातु वो दयितामुखम्' इति साम्मुख्ये। 'भात्यत्र परमेश्वरः' इति राजधानीरूपाद् देशाद् राजनि। 'चित्रभानुर्विभाति' इति दिने रवौ रात्रौ वह्नौ। 'मित्रं भाति' इति सुहृदि। 'मित्रो भाति' इति रवौ। इन्द्रशत्रुरित्यादौ वेदे एव न काव्ये स्वरो विशेषप्रतीतिकृत्।

इसे बिन्दुवार स्पष्ट किया जा रहा है-

(१) **संयोग**-जैसे 'संशंखचक्रो हरिः' अर्थात् 'शंख और चक्र से युक्त हरि' इस उदाहरण में शंख और चक्र के साथ विष्णु का सम्बन्ध होने से 'हरि' शब्द विष्णु अर्थ में नियन्त्रित हो गया है। यद्यपि 'हरि' शब्द के यम, अनिल, इन्द्र, सूर्‌य, चन्द्रमा, विष्णु, सिंह, अश्व, सर्प, बन्दर आदि अनेक अर्थ होते हैं किन्तु यहाँ शंख और चक्र के साथ संयोग होने से 'हरि' शब्द का विष्णु अर्थ जाता है।

(२) **विप्रयोग**-जैसे 'अशंखचक्रो हरिः' अर्थात् 'शंख-चक्र से रहित हरि' इस उदाहरण में विप्रयोग के कारण 'हरि' शब्द 'विष्णु' का वाचक हो गया है क्योंकि शंख और चक्र का वियोग विष्णु के साथ ही संभव है, यम, अनिल, इन्द्र आदि के साथ नहीं, इसलिए 'हरि' शब्द यहाँ 'विष्णु' का वाचक है।

(३) **साहचर्य**- साहचर्य से भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'रामलक्ष्मणौ' इस उदाहरण में 'लक्ष्मण' के साहचर्य से राम शब्द दशरथ पुत्र राम का वाचक हो जाता है। यद्यपि 'राम' शब्द के राम, परशुराम, बलराम आदि अनेक अर्थ होते हैं किन्तु यहाँ लक्ष्मण के साथ प्रयुक्त होने से राम शब्द का अर्थ दशरथ पुत्र राम होता है।

(४) **विरोधिता**-विरोध के कारण भी अनेकार्थ शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है । 'विरोधिता' का अर्थ है-प्रसिद्ध वैर। रामार्जुनगतिस्तयोः' अर्थात् 'उन दोनों की दशा राम और अर्जुन के समान है'। यहाँ पर राम और अर्जुन दोनों में प्रसिद्ध वैर के कारण 'राम' शब्द परशुराम अर्थ में और 'अर्जुन' शब्द सहस्रबाहु कार्तवीर्य अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(५) **अर्थ**-जहाँ अनेकार्थक शब्द किसी प्रयोजन से एक अर्थ में नियन्त्रित होता है वहाँ 'अर्थ' हेतु होता है। 'अर्थ' रूप हेतु से भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित होता है। जैसे 'स्थाणुं भज भवच्छिदे' में भवच्छेद के कारण 'स्थाणु' के भजन का निर्देश है। 'स्थाणु' शब्द के शिव, ठूठा पेड़ आदि अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु यहाँ भवच्छेदन (जगत् तारण) के लिए शिव का ही भजन हो सकता है, अतः यहाँ 'स्थाणु' शब्द एकमात्र शिव के अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(६) **प्रकरण**- प्रकरण का अर्थ है प्रसंग, सन्दर्भ अथवा वक्ता-श्रोता की बुद्धिस्थता। प्रकरण के अनुसार भी अनेकार्थक शब्द एकार्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे- किसी राजा को सम्बोधित कर कोई कहता है कि 'सर्वं जानाति देवः' अर्थात् 'देव सब जानते हैं' यहाँ पर अनेकार्थक 'देव' शब्द प्रसंग के अनुसार 'राजा' या 'महाराज' अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(७) **लिंग**-लिंग अर्थात् चिह्न विशेष को देखकर भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित होता है। जैसे-'कुपितो मकरध्वजः' अर्थात् मकरध्वज कुपित हैं। मकरध्वज के समुद्र, कामदेव, औषधि विशेष आदि अनेक अर्थ होते हैं किन्तु कोपरूप लिंग या चिह्न विशेष के कारण 'मकरध्वज' शब्द कामदेव के अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(८) **अन्य शब्द की सन्निधि**- किसी अन्य शब्द के सान्निध्य के कारण भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। प्रदीपकार का कथन है कि जहाँ किसी अनेकार्थक शब्द के साथ किसी निश्चितार्थक शब्द का समानाधिकरण्य होता है वहाँ वह अनेकार्थक शब्द अपने समानाधिकरण शब्द के द्वारा एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'देवस्य पुरारातेः' इस उदाहरण में देव शब्द अनेकार्थक होने पर भी 'पुराराति' शब्द के समानाधिकरण्य या सान्निध्य से शिव अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(९) **सामर्थ्य**- सामर्थ्य का अर्थ है कारणता। सामर्थ्य के कारण भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'मधुना मत्तः कोकिलः' अर्थात् कोयल मधु मे मत्त है। 'मधु' शब्द के बसन्त, मकरन्द, शहद आदि अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु यहाँ पर कोयल की उन्मत्तता की कारणता या सामर्थ्य वसन्त ऋतु में होने से 'मधु' शब्द वसन्त ऋतु रूप अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(१०) **औचित्य**- औचित्य का अर्थ है 'योग्यता'। औचित्य के कारण भी अनेकार्थक शब्द एकार्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'पातु वो दयितामुखम्' अर्थात् प्रिया का मुख तुम्हारी रक्षा करे। इस उदाहरण में मुख शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी औचित्य के कारण साम्मुख्य (अनुकूलता) अर्थ में नियन्त्रित हो गया है, क्योंकि कामिनी का साम्मुख्य (अनुकूलता) ही कामपीड़ितों की रक्षा में योग्यता है।

(११) **देश**- देश (स्थान) विशेष के कारण भी अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है, जैसे 'भात्यत्र परमेश्वरः'। इस उदाहरण में 'अत्र' अर्थ राजधानी है परमेश्वर शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी राजधानी रूप देश विशेष के कारण यहाँ पर 'राज विशेष' अर्थ में नियन्त्रित हो गया है।

(१२) **काल**- समय विशेष के कारण भी अनेकार्थक एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'चित्रभानुर्विभाति' इस उदाहरण में अनेकार्थक चित्रभानु शब्द दिन में प्रयुक्त होने पर 'सूर्य' अर्य और

रात्रि में प्रयुक्त होने पर 'अग्नि' अर्थ में नियन्त्रित हो गया है। अर्थात् दिन में प्रयोग करने पर चित्रभानु का अर्थ 'सूर्य' होगा और रात्रि में प्रयोग करने पर 'अग्नि' अर्थ होगा।

(१३) **व्यक्ति**- व्यक्ति अर्थात् स्त्रीलिंग, पुल्लिंग आदि के आधार पर अनेकार्थक शब्द एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। जैसे 'मित्रं भाति' इस उदाहरण में नपुसकलिंग में प्रयुक्त होने के कारण 'मित्र' शब्द का अर्थ 'सुहृद्' हो गया और 'मित्रो भाति' इस उदाहरण में मित्र शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त होने से सूर्य' अर्थ को द्योतित करता है क्योंकि कोशादि के अनुसार सुहृद् वाचक 'मित्र' शब्द नपुसकलिंग होता है और 'सूर्य' अर्थ का वाचक मित्र पुंल्लिग में प्रयुक्त होता है।

(१४) **स्वरादि**-स्वरादि का अभिप्राय है- उदात्त, अनुदात्तादि स्वर तथा अभिनय आदि। स्वर तो वेदों में ही अर्थ का नियामक होता है, काव्यशास्त्र में इसका कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए इसका उदाहरण वेद में ही मिलता है । काव्य में नहीं, अतः मम्मट ने इसका उदाहरण नहीं दिया है।

स्वरभेद से अर्थ भेद का उदाहरण 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' है। यहाँ पर 'शत्रु' का अर्थ 'शातयिता' (मारने वाला) किया गया है। 'इन्द्रशत्रुः' पद में दो प्रकार के समास हो सकते हैं प्रथम 'इन्द्रस्य शत्रुः शातयिता' (इन्द्र का मारने वाला) इस अर्थ में षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। इस अर्थ में षष्ठी तत्पुरुष समास होने पर 'समासस्य' सूत्र से 'इन्द्रशत्रु' पद में 'अन्तोदात्त' होता है। इस प्रकार अन्तोदात्त होने पर इसका 'इन्द्र का शत्रु वृत्रासुर की विजय (वृद्धि) हो' यह अर्थ होता है। द्वितीय 'इन्द्रशत्रु' पद में 'इन्द्रः शत्रुः (शातयिता) यस्य स इन्द्रशत्रुः- इन्द्र जिसका शातयिता (हन्ता-मारने वाला) है। इस अर्थ में बहुव्रीहि समास होता है। बहुव्रीहि समास होने पर 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' इस सूत्र से पूर्व पद पर उदात्त (आद्युदात्त) होता है। इस प्रकार आद्युदात्त होने पर 'इन्द्रशत्रु' पद का अर्थ 'इन्द्र ही जिसका शत्रु (हन्ता) है अर्थात् वृत्रहन्ता इन्द्र की वृद्धि (जय) हो यह अर्थ होगा। यहां पर 'इन्द्रशत्रु' शब्द स्वरभेद के कारण 'इन्द्र' के अर्थ में नियन्त्रित हो गया है। अर्थात् 'इन्द्रशत्रु' शब्द षष्ठी तत्पुरुष समास होने पर अन्तोदात्त होने से 'वृत्रासुर' के अर्थ में और बहुव्रीहि समास होने पर आद्युदात्त होने से 'इन्द्र' अर्थ में नियन्त्रित हो जाता है। इस प्रकार मम्मट के अनुसार वेद में ही स्वर अर्थ का निर्णायक होता है, काव्य में नहीं।

वाक्पदीय की ‘संयोगोविप्रयोगश्चेत्यादि’ कारिका में ‘कालो व्यक्तिः स्वरादयः’ में ‘आदि’ पद से ‘अभिनय’ तथा ‘अपदेश’ का ग्रहण होता है। इस प्रकार ‘अभिनय’ अथवा हस्तादि चेष्टाओं के द्वारा भी अनेकार्थक पद के अर्थ का निर्णय होता है।

इस प्रकार संयोगादि के द्वारा अनेकार्थक शब्द (अर्थान्तर) के बोधकत्व के निवारण हो जाने पर भी उस अनेकार्थक शब्द से जो कहीं दूसरे अर्थ का प्रतिपादन करता है वहाँ अभिधा नहीं हो सकती, क्योंकि उसका तो संयोगादि से, नियन्त्रण हो चुका है, और मुख्यार्थबाध आदि हेतुओं के न होने से लक्षणा भी नहीं हो सकती, किन्तु अंजन अर्थात् व्यंजन व्यापार ही होता है-

“इत्थं संयोगादिभिरथान्तराभिधायकत्वे निवारतेऽप्यनेकार्थस्य शब्दस्य यत्क्वचिदर्थान्तरप्रतिपादनं तत्र नाभिधा नियमनात्तस्याः। न च लक्षणा मुख्यार्थबाधाद्यभावात् अपितु अञ्जनं व्यंजनमेव व्यापारः”।

आर्थी व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः।
प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम्।।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा।

अर्थात् वक्ता, बोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्य सन्निधि, प्रस्ताव, प्रकरण, देश, काल, ‘चेष्टा’ आदि के वैशिष्ट्य से प्रतिभावान् सहृदयों को अन्य अर्थ की प्रतीति कराने वाला जो अर्थ का व्यापार है, वह आर्थीव्यञ्जना कहलाता है।